बस्तर के आदिवासी जनजाति एवं मृतक–स्मृति–स्तंभ कला

*महेश प्रजापति

पृष्ठभूमि

मूलतः मृतक–स्मृति–स्तंभ कला एक आदिवासी लोकशिल्प कला के रूप में जानी जाती है। परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु के बाद उसकी स्मृतियों को अपने साथ संजोये रखना एवं मृतक की आत्मा की शांति की कामना के साथ खुले आसमान के नीचे किसी निश्चित स्थान पर गाड़े गये स्तंभों को चित्रों से भर दिया जाता है।

पहले तो यह कला सिर्फ लकड़ी के स्तंभों तक ही सीमित थी पर अब इसे पत्थरों के बनाएं स्तंभ आकार के ऊपर रंगों के माध्यम से इस पर चित्र अंकित किया जाता है। लकड़ी पर कुशलता पूर्वक उकेर कर उसमें मृतक व्यक्ति से संबंधित क्रिया कलाप, देवी–देवता, पशु–पक्षी अथवा सामाजिक रीति–रिवाजों, नाचगानों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। चूंकि लकड़ी पर उकेरी आकृतियां खुले आसमान के नीचे रहते हुए मौसम के प्रभाव के कारण लकड़ी के साथ ही नष्ट हो जाती थी। इसलिए अब इसका स्थान पत्थरों ने ले लिया है। कुछ स्थानों पर इसे टेराकोटा (मृणमय) के माध्यम से भी बनाया जाता है। पत्थरों पर उकेरने के साथ–साथ इस पर रंगों का भी प्रयोग किया जाता है, जिसमें वानस्पतिक रंग एवं खनिज रंग विशेष रूप से प्रयुक्त होते थे, परन्तु अब कलाकारों ने तैलीय रंगो का प्रयोग करना प्रांरभ कर दिया है।इसके बनाने वाले चित्रकार ज्यादातर आसपास के गावों के ही होते हैं, जो उचित पारिश्रमिक (मूल्य) लेकर इन स्तंभों पर चित्रण करते हैं।

मृतक–स्मृति–स्तंभों को बनाने की प्रथा सदियों पुरानी है। कभी लकड़ी पर, कभी पत्थरों पर, कभी सीमेंट पर परम्परागत ढंग से आकृतिओं का निर्माण कर इस प्रथा को आदिवासी समाज द्वारा निभाया जाता रहा है। यह प्रथा कब शुरू हुई होगी इस बात का पता लगाना मुश्किल है, परन्तु इनसे जुड़ी कुछ विशेष जानकारियां जरूर प्राप्त होती है।

सहायक प्रवक्ता, राजकीय कला महाविद्यालय, चण्डीगढ.*

बस्तर के आदिवासी जनजातियों की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

छत्तीसगढ की शानदार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत का धनी राज्य रहा है, जिसका उल्लेख महांभारत और रामायण जैसे पौराणिक ग्रन्थों में 'कौशल' के नाम से मिलता है। विभिन्न साम्राज्यों जैसे– मौर्य, सातवाहन, वकातक, गुप्तवंश, नलवंश, पांडुवंश, सोमवंशी, नागवंशी, मंडलिक और कलचुरी आदि प्रमुख हैं, जो इस क्षेत्र से जुड़े रहे। आदिवासी जातियों की बहुतायत होने से छत्तीसगढ की अपनी अलग रंगीन सांस्कृतिक धरोहर है। इस पूरे राज्य में 35 आदिवासी जातियां हैं जो पूरे प्रदेश में फैली हुई हैं। बस्तर के माड़िया, मध्यप्रदेश के भील एवं कोरकू अदिवासी इस कला को परम्परागत रूप से बनाते आ रहे हैं। मृतक–स्मृति–स्तंभ की इस कला के इतिहास को जानने के लिए हमें छत्तीसगढ़ का इतिहास, उसकी संस्कृति के साथ–साथ आदिवासी जन–जीवन एवं रहन–सहन को जानना जरूरी होगा।

(मानचित्र–1)

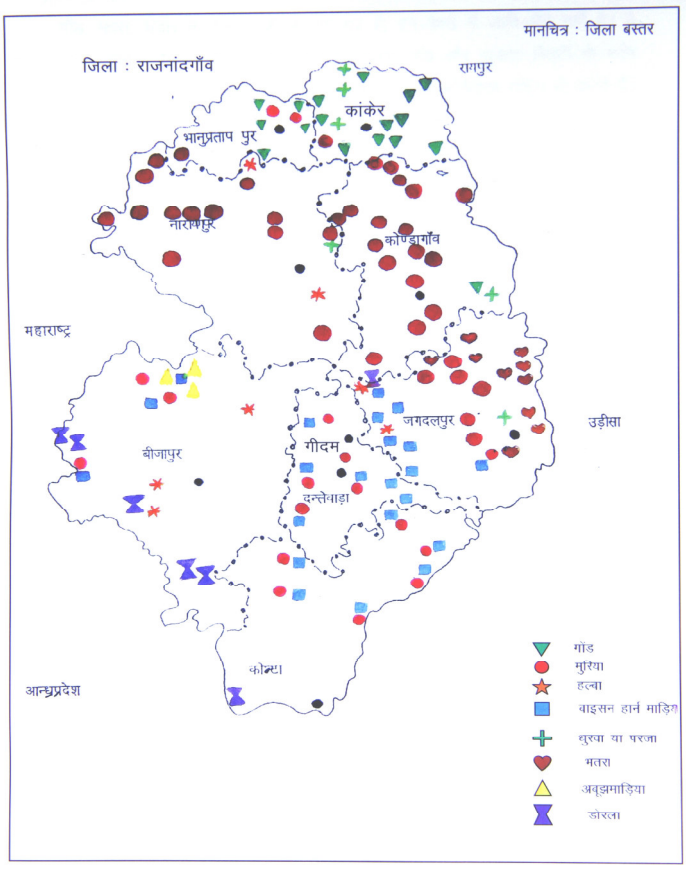

बस्तर के सात सांस्कृतिक उपक्षेत्रों को उनमें रहने वाले आदिवासियों के आधार पर सूचित किया जा सकता है, जैसे –

(1) अवर्गीकृत गोंड क्षेत्र
  (अ) माड़िया आदिवासी क्षेत्र–
    (क) बाईसन हार्न माड़िया आदिवासी क्षेत्र
    (ख) अबूझमाड़िया आदिवासी क्षेत्र
  (आ) मुरिया आदिवासी क्षेत्र
(2) भतरा आदिवासी क्षेत्र
(3) हलबा आदिवासी क्षेत्र
(4) डोरला आदिवासी क्षेत्र
(5) धुरवा (परजा) आदिवासी क्षेत्र
(6) बैगा आदिवासी क्षेत्र
(7) कोरकू आदिवासीक्षेत्र
(8) भील आदिवासी क्षेत्र

ये उपक्षेत्र एक दूसरे से अपने घरों के प्रकार, वेशभूषा, धर्म और रीतिरिवाजों में भिन्न–भिन्न हैं।

(1) अवर्गीकृत गोंड क्षेत्र –यह प्रजाति सबसे महत्वपूर्ण प्रजाति है, और जनसंख्या की दृष्टि से यह सबसे बड़ा आदिवासी समूह है। ये मध्यभाग में, जिसमें छिंदवाड़ा, बैतूल, सिवनी आता है, में रहते हैं अथवा छत्तीसगढ़ के दक्षिणी हिस्से के पर्वतीय क्षेत्रों में। मंडला में इनकी आबादी का आधा भाग आता है, शेष पूरे प्रदेश मे फैले हुए है।"[1]

यह जनजाति मध्यप्रदेश के अतिरिक्त आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा और दक्षिण में तमिलनाडु तक फैली है। इसके पष्चिम में भीलों का प्रदेश आ जाता है। इनको अपनी मूल अवस्था में बस्तर, विशेषकर अबूझमाड़ में देखा जा सकता है। उत्तर में छत्तीसगढ़ के मैदान में भी इनका आवास है।"[2] गोंड लोगों में ज्यामितिय विभाजन बहुत ज्यादा है, कई तरह के गोंड है। लेकिन वे खुद लगभग 12 जनजाति को गिनते हैं। इनके

[1] संदर्भ छत्तीसगढ़, पृष्ठ 63
[2] छत्तीसगढ़ एक भौगोलिक अध्ययन, डॉ प्रमिला कुमार, पृष्ठ 75

नाम–राजगोंड, बधुवाल, दादावी, काटुल्य, ढोली, ओस्याल, भोटयाल, कोईलाभुटाल कोईकोपाल, कोलम, मुड्याल, पडाल और कुछ अन्य निम्न जाति। इनकी विशिष्ट भाषा पूरे गोड़वाना देश में बोली जाती है जो हैं गोंडी।"[1] गोंडों मे श्रेष्ठ सौंदर्यपूरक संस्कृति विकसित की है। नृत्य व गान उनका प्रमुख मनोरंजन है। वर्तमान में यह प्रजाति घोर गरीबी का शिकार है।"[2]

"छत्तीसगढ़ के मैदान में गोंड अधिकतर कृषक या कृषि मजदूर हैं। इनमें हिन्दुओं का प्रभाव अधिक दिखता है। यह गाय का मांस नहीं खाते तथा मन्त्रोन्तर विवाह भी करते हैं।"[3] घोटुल गोंड समाज की विशेषता है। यह गांव के बाहर बनाया जाता है, जहां गांव के युवक युवतियां रहते है। यहां ढोल आदि वाद्य यंत्र भी रहते हैं। यह शिक्षा एवं परम्पराओं को सीखने का स्थान होता है।

(अ) माड़िया आदिवासी क्षेत्र–माड़िया जनजाति के लोग बस्तर में रहते हैं। माड़िया आदिवासियों का ग्रियर्सन ने गंभीर अध्ययन किया है ग्रियर्सन ने उन्हें कई श्रेणियों में विभाजित किया है। इनमें से अनेक अबूझमाड़ की पहाड़ियों में रहते हैं और उन्हे 'अबूझमाड़िया' नाम से ही पुकारा जाता है। ये लोग जमीन बदल–बदलकर खेती करते है। माड़िया का दूसरा वर्ग 'बाईसन–हार्न' माड़िया कहलाता है

मृतक–स्मृति–स्तंभ नामक कला के निर्माण के लिए मुख्यतः माड़िया जनजाति अग्रणी है। बस्तर के पहाड़ी माड़िया पहाड़ों में रहते है।

(क) बाईसन हार्न माड़िया आदिवासी क्षेत्र –बाईसन–हार्न–माड़िया का मुकुट से ही पहचान और नाम पड़ा है। बाईसन हार्न माड़िया का जीवन बहुत शांत, सुखमय व मस्ती के साथ व्यतीत होता है। इनमें अधिक लड़ाई–झगड़े नहीं होते व नृत्य इनके जीवन का प्रमुख अंग है। रात्रि को नृत्य व गायन करते है। कभी खाना पीना भी दो

[1] The wild Tribes of India, Horatio Bickerstaffe Rowney Page 9
[2] संदर्भ छत्तीसगढ़, पृष्ठ 63
[3] छत्तीसगढ़ एक भौगोलिक अध्ययन, डॉ० प्रमिला कुमार, पृष्ठ 76

तीन दिनों तक भूल जाते है और निरन्तर नृत्य करते रहने में भी नहीं थकते हुए आनंद लेते है। "बाइसन हार्न माड़िया, जिन्हें हिन्दी साहित्य में दन्डामी माड़िया कहा गया है। मूलरूप से दंतेबाड़ा तहसील के निवासी है। "[1] पहाड़ी माड़िया प्रगतिहीन एवं पिछड़े हैं जबकि उनके पड़ोसी मुरिया और बाईसन–हार्न–माड़िया उन्नत कृषि संस्कृति वाले हैं। माड़िया गांव में दो लकड़ियों को घिसकर आग पैदा करने का तरीका भी है।"[2]

(ख) अबूझमाड़िया आदिवासी क्षेत्र –

इनकी भाषा मान्डकी है इसमें गोंडी हलबी के कुछ शब्द मिलते है। मोटा माड़ परगना में मेटा माड़िया रहते हैं। यह परगना ओरछा व उसके आसपास के गांव में है। माड़िया लाल चीटों को जिन्हें 'चपोडा' कहते हैं, बड़े शौक से खाते है। घोटुल मे करने वाले नृत्य को कोकेरंग कहते हैं। इनका पूर्ण विश्वास है कि घोटुल देव 'लिंगोपेन' घोटुल में संतान नहीं होने देगा। इतनी आजादी है कि इसी कारण ये लोग चरित्र के पक्के होते है। घोटुल में किसी को भी खूब प्रेम करें किन्तु दिन को आपस में आंख उठाकर भी नहीं देखेंगे। घोटुल के बाहर इनकी वासना जागृत नहीं होती।

(आ) मुरिया आदिवासी क्षेत्र – मुरिया गोंडो की एक उपजाति है, इनमें राजमुड़िया झोरिया, मुरिया तथा घोटुल मुरिया सम्मिलित है।"[3] यह प्रजाति भी बस्तर जिले की है। मुरिया का शब्दिक अर्थ आदिम होता है। ज्यादातर अबूझमाड़ियों को छोड़कर बस्तर की सभी आदिम जातियों को मुरिया कहकर बुलाया जाता है पर यह विशेष जनजाति ही है।"[4]

मुरिया नाम 'मूर' शब्द से उदृत किया गया है। 'मूर' जो जंगल के वृक्ष की जड़ एक रास्ता का पर्यायवाची है इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नही है क्योंकि मुरिया का नाम जंगल के ज्वाला से हुआ जो न तो उनके सम्बन्ध सूचक चिन्ह है न उनके द्वारा विशेष

[1] Human Geography of Bastar District, Verrier Elevin, Page 235
[2] The Tribals of India, Sunil Jangh Page 72
[3] छत्तीसगढ़ एक भौगोलिक अध्ययन, डॉ0 प्रमिला कुमार,, पृष्ठ 78
[4] संदर्भ छत्तीसगढ़, पृष्ठ 64

रूप से सम्मिलित किया जाता, न उनके क्षेत्र में सामान्य है। मूर का मतलब स्थायी। मुरिया का पहाड़ी माड़िया के विरोध स्थायी निवास और रहन सहन होता है। वे अच्छे कृषक होते हैं। हिस्ल्प ने उनके बारे में वर्णन किया कि ये माड़िया की अपेक्षा अधिक सभ्य होते हैं।"[1] इनकी जीवन–शैली में 'घोटुल' महत्वपूर्ण जगह होती है। "[2] महुआ के फूलों से ये लोग शराब तैयार करते हैं और उसे देवी–देवताओं को चढ़ाते हैं। शराब पीना और आनन्द उठाना एक तरह से इनका संस्कार होता है।"[3]

(2) भतरा आदिवासी क्षेत्र – बस्तर और रायपुर के दक्षिणी भाग में रहने वाली यह आदिम जनजाति है। यह कहा जाता है कि भतरा आन्ध्रप्रदेश के वारंगल से बस्तर काकतीय शासक के साथ यहां आये।"[4] यह आदिवासी जनजाति गोंड के सजातीय है। अब ये तेजी से हिन्दू जाति में परिवर्तित हो रहे हैं।

भतरा छोटी धोती पहनते है एवं ये धोती को हल्दी एवं तेल से रंगते है ताकि उस पर मैल का असर नहीं हो। स्त्रियां मोटी मोटी चूड़ियाँ पहनती हैं त्यौहार में पीला कपड़ा जो कमर में लपेट कर एक छोर छाती के ऊपर पहनती है। सांस्कृतिक उपलब्धियों के क्रम मे भतरा आदिवासी क्षेत्र दूसरे स्थान पर है।

(3) हलबा आदिवासी क्षेत्र – यह रायपुर, धमतरी, बिन्द्रा, नवागढ़ तथा दुर्ग की एक जनजाति है। यह एक द्रविड़ जनजाति है तथा गोंडों के बाद उनकी संख्या है। ये बस्तर, छत्तीसगढ़िया और मरेथिया समूहों में बंटे है।"[5]

हलबा बस्तर के निवासियों में सबसे अच्छी जाति समझी जाति है। ये लोग अन्य जनजातियों से साफ सुधरे रहते हैं। हलबा जाति के लोग सांवले व गोरे रंग के होते है। बस्तर में ये लड़ने वाली जाति है। ये लोग तीर चलाने में व जड़ी–बूटी बनाने में

[1] शोध प्रबन्ध, बस्तर के आदिवासियों के आभूषण एवं साज सज्जा में कलात्मक तत्व, संतराम महोबे, पृष्ठ 75
[2] संदर्भ छत्तीसगढ़, पृष्ठ 64
[3] संदर्भ छत्तीसगढ़, पृष्ठ 64
[4] Human Geography of Bastar District, Verroer Elwin, Page 235
[5] डॉ, प्रमिला कुमार, छत्तीसगढ़ एक भौगोलिक अध्ययन, पृष्ठ 78

होशियार होते हैं। अन्य आदिम जातियों से सभ्य एवं सुसंस्कृत है। बातचीत एवं व्यवहार में अच्छे होते हैं।"[1]

(4) डोरला आदिवासी क्षेत्र – दोरला लगभग मुरिया,माड़िया क्षेत्रों में रहते हैं। परन्तु उनसे भी निकले हुए भिन्न आदिवासी हैं। अतः सांस्कृतिक दृष्टि से उतने सम्पन्न नही हैं।

(5) धुरवा (परजा) आदिवासी क्षेत्र –ये आदिवासी दक्षिण पूर्व जगदलपुर तहसील और सुकमा के कुछ हिस्सों में स्थित है। इनका निवास पड़ोस के राज्य उड़िया के कोरापुर जिले तक पूर्व दिशा में है। परजा का बस्तर में समावेश कम है। उत्तर पूर्व पठार के किनारे और साथ के शबरी निचले क्षेत्र में ये बसे हुए है।

(6) बैगा आदिवासी क्षेत्र – यह प्रजाति अधिकांशतः मंडला में बसी हुई है, बालाघाट में भी बैगा आदिवासी रहते हैं तथा बिलासपुर व राजनांदगांव जिले में भी बड़ी संख्या में बैगा आदिवासी रहते है। इनके कुछ विकसित वर्ग बिंझवार में हैं जो महासमुंद जिले में मिलते है।

(7) कोरकू आदिवासी क्षेत्र –कोरकू के रहन–सहन भील आदिवासियों से भी मिलता–जुलता है। गोत्र को पुजने वाले कोरकू आदिवासी भी परम्परावादी होते है। पूजा–पाठ विशेष रूप से करते है। इनकी जनसंख्या कम है पर फिर भी एकजुट होकर धार्मिक कार्य सम्पन्न करते हैं।

(8) भील आदिवासी क्षेत्र –जनसंख्या के हिसाब से देखें तो भील गोंड से काफी कम है। पर बाकी चीजों में एक महत्त्वपूर्ण जनजाति है। उनके प्रदेश को 'भीलवारा' कहा जाता है। ये अपनी बाहों में विंध्य, सतपुड़ा और सातमल्ली पर्वतों को समेटे हुए है। इसमें नर्मदा के दोनों तट के जंगल, ताप्ती और माही भी निकाला गया था। भील कई उपजनजाति में बंटे है।

[1] शोध प्रबन्ध, बस्तर के आदिवासियों के आभूषण एवं साजसज्जा में कलात्मक तत्त्व, संतराम महोबे, पृष्ठ 79

बस्तर के आदिवासी जनजातियों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ

तीज–त्यौहार को धार्मिक पर्व के रूप में मानने वाले बस्तर के आदिवासी हमेशा अपने पूर्वज़ों की परम्परा का अनुसरण करते हैं। जीवन–मृत्यु को देवी–देवताओं का आदेश मानकर उसकी स्तुति करते हैं, उसे स्वीकार करते हैं। जीवन की मौज़–मस्ती में आदिवासी कभी नहीं भूलते कि जीवन का महत्व क्या है? तभी तो मृत्यु के बाद भी मृतक की यादों को मृतक–स्मृति–स्तंभों मे सजा कर रखने का प्रयास करते हैं। मृत्यु के बाद घर–परिवार के दुखों तथा रोने का सिलसिला तब तक चलता रहता है जबतक की मृतक के शरीर को दफन या जला न दिया जाता है। "गाड़ने के लिए या जलाने के लिए, दोनों तरीकों में मृतक के शरीर को गड्डे में या चिता पर सिर या चेहरा ऊपर की ओर अर्थात पूरब की ओर, पैर पश्चिम की ओर किये जाते हैं।"[1] क्रियाकर्म या अंतिम संस्कार के तुरन्त बाद सारे लोग गॉव के तरफ जाने वाले रास्ते की बाजू में किसी जगह रुकते हैं, जहाँ 'इरामतोघ' या को

(चित्र–3)

नजदीकी रिश्तेदार एक छोटा बनाता है, जो डेढ़ से ढाई फीट ऊॅचा होता हैं, उसके ऊपर एक सपाट पत्थर रखता है। इस ढेर को मर्म–काल या मर्माण काल कहते

[1] The Maria Gond of Bastar, Sir Wilfrid Grigson, Page 272

हैं। इस पत्थर के ऊपर वो और बाकी लोग चुटकी भर चावल या कुटकी डालते हैं, साथ में मृतक के नाम का उच्चारण करते हैं, और उससे उसे बताते है कि ये अन्न (धान) उसे अर्पण किया जा रहा है। इसके बाद सब वापस घर लौट जाते है। ये ढेर मृतक के अंतिम संस्कार वाले स्थान से कुछ दूरी पर रास्ते में बनाया जाता है। यहां जमीन को साफ करके उस पर थोड़ा धान रखकर एक छोटे मुर्गे को लाकर उसकी गर्दन काटकर अर्पण करते है। 'इरामतोघ' या कोई अन्य करीबी मृत मुर्गे के बगल में बड़ा सपाट पत्थर रखता है।ये पत्थर इसलिए रखा जाता है कि रिश्तेदार के पास पर्याप्त धान्य या पैसा, 'मन्हीर' खड़ा करने के लिए लगता है, वो नहीं होता।

मृतक–स्मृति–स्तंभों में चित्रण के विषय

आदिवासी जनजातियों के चित्रों के विषय सदा ही मनोहारी हुआ करते हैं, चाहे ये चित्र दीवार पर हो या फिर स्तंभों पर। अपने जीवन से जुड़ी घटनाओं तथा रोजमर्रा के क्रियाकलाप को रूपाकारों में बांधकर हर पल के लिए अपने साथ रख लेते हैं। लकड़ी के बने स्मृति–स्तम्भों में आदिवासी कलाकारों ने अपने कुल देवता, गोत्र संबंधित, राजा–रानी एवं विभिन्न देवी–देवताओं को चित्रण का विषय बनाया। इनके अलावा अपने जन–जीवन केक्रिया–कलापों, नाच–गानों, मौजमस्ती आदि को भी विषय के रूप में प्रस्तुत किया है।

(चित्र–4)

(चित्र–4) लकड़ी के स्तम्भ अब बहुत विरले ही देखे जा सकते हैं। मौसम के प्रभाव, कीड़े–मकोड़ों के कारण लकड़ी के स्तम्भ लगभग नष्ट हो चुके हैं।

स्मृति–स्तम्भों पर बने विषय मुख्यतः देवी–देवताओं, गोत्र विषयक, मानव आकृतियां, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, फल–फूल, पहाड़, नदी–नाले, चांद–सूरज होते हैं। कहीं–कहीं मृतक के प्रिय अस्त्र–शस्त्र, जानवर, हल–बैल, पशु–पक्षी, कीट–पतंगों को उकेरा गया है। आदिवासी गौर नृत्य की वेश–भूषा में नर्तक और नर्तकी का चित्रण अक्सर देखने को मिलता है।"[1] पूरे दण्डामी माड़िया में चित्रकला के रूप से सिर्फ मृतक स्तम्भों पर बनाये गये या उकेरे हुए चित्रों की जानकारी मिलती है। हाँ, आंगादेव, जो लकड़ी से बनाया जाता है उनका मुंह का वह भाग जो सर्प या पक्षी की तरह आगे निकला होता है, उसकी आकृतियों में विभिन्नता या रेखाओं के आकार अलग–अलग रूप में मिलते है। किन्तु भित्तिचित्र, कपड़े या बर्तनों पर चित्रों का कोई विशेष काम जो दण्डामी माड़िया के नाम से पहचाना जा सके, ऐसा नहीं है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि इनमें मृतक स्तम्भ से भिन्न कोई अन्य चित्र परम्परा नहीं है। लकड़ी के बने कुछ स्तंभों पर आदिवासी संस्कार, सामाजिक रीतियां, आर्थिक जीवन, बाजारहाट के चित्र, पशु पक्षियों के चित्र, आखेट दृश्य, अस्त्र–शस्त्र धारी योद्धा, भूत प्रेत, प्रकृति वृक्ष आदि का चित्रण किया देखने को मिलता है, यह स्तम्भ मृतक की स्मृति को सदा बनाए रखने की इच्छा का प्रतीक है। "[2] अनेक स्मृति–स्तंभों में आदिवासी

अपने देवी देवताओं का चित्रण करते है। **(चित्र–5)**

[1] दण्डामी माड़िया, नवल शुक्ल, पृष्ठ 27
[2] दण्डामी माड़िया, नवल शुक्ल, पृष्ठ 49

जैसे हाथी पर सवार देवी, जिसे आदिवासी "लक्ष्मी" मानते है। देवी के एक हाथ में छाता तथा दूसरे हाथ में धन की थैली पकड़े चित्रित किया जाता है**(चित्र–5)**

नागवंशीय जनजाति अपने स्मृति–स्तंभों में नाग की आकृति को अवश्य अंकित करते है क्योंकि नाग (सांप) को नागवंशी अपना पूर्वज मानते है। अनेक गण चिन्हों में इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते है। जिसमें गोत्र के रूप में पूजे जाने वाले पशु–पक्षी, पेड–पौधों को दर्शाया गया है। शेर, मगर, बन्दर, रीछ, लकड़बग्घा, कछुआ, मछली, चूहा, गिलहरी, बगुला, हंस, सुअर, सांड, मोर, नेवला, सांप, मृग, साही, चीता, बकरा, ऊंट, घोड़ा, हाथी, छिपकली, केकड़ा, सारस, मेंढ़क, बतख, खरगोश, हिरन, उल्लू, बैल, तोता, लोमड़ी आदि। अन्य विषय जैसे–चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, सेनल का पेड़, बेरी, केले का पेड़, पीपल, वट, साल वृक्ष, आम का पेड़ आदि भी इनके चित्रण विषय है। इसी प्रकार कुछ अन्य आकृतियां जैसे–नर्तक–नर्तकी, सल्फी का वृक्ष, शराब पीता हुआ व्यक्ति, विभिन्न प्रकार के पक्षी, मोटर कार, ट्रक, हवाई जहाज, अनेक प्रकार के

© CGCTA

अस्त्र–षस्त्र का चित्रण देखा जा सकता हैं।"[1] **(चित्र–6)**

(चित्र–6)

(चित्र–7)

स्तंभों के ऊपरी सिरे पर दो तीन फिट की छड़ लगाकर इस पर चिड़ियों की आकृति बनाकर लगाया जाता है। यह आकृति आत्मा का प्रतीकात्मक रूप होती है जिस प्रकार मरने के बाद आत्मा ऊपर चली जाती है। उसी प्रकार चिड़िया भी आसमान में स्वतंत्र होकर भ्रमण करती है। कुछ स्तंभों में एक मानव आकृति के हाथ में खड्ग लिए घोड़े पर सवार चित्रित करते है। **(चित्र–7)** यह ज्यादातर लकड़ी के स्तंभों में देखने को मिल जाता है। कहीं पर इन्होंने गर्भवती स्त्री को भी, तथा कहीं–कहीं पर स्त्री का बच्चे को जन्म देते हुए (प्रसव का) चित्रण किया गया है।

[1] दण्डामी माड़िया, नवल शुक्ल, पृष्ठ 49

आदिवासियों के मौलिक विचारों, जीवन चक्र, क्रिया–कलाप, पर्यावरण एवं लोक विष्वासों का प्रतिनिधित्व स्तंभों के माध्यम से करते है। लकड़ी के बने स्तंभों में रंगों का व्यवहार पहले के लकड़ी के स्तंभों पर देखने को नहीं मिलता है। लेकिन आजकल के लकड़ी, पत्थर या सीमेंट के स्तंभों पर भी रंगों का व्यवहार बड़ा ही रोचक दिखाई देता है। मोटर गाड़ी, साईकल, रिक्शा एवं हवाई जहाज को भी चित्रित किया है। इसी प्रकार कलाकारों ने फिल्मों के प्रभाव से प्रभावित होकर फिल्मों के दृश्यों को भी चित्रण विषय में शामिल किया है। यह कलाकारों की अपनी निजी सोच का परिणाम है इससे स्तंभों की गरिमा एवं गौरव पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक ही होगा।

(चित्र–8)

स्मृति–स्तंभों में कुछ खास दृश्य देखने को मिलते हैं जो मनोरंजन के लिए कलाकार द्वारा चित्रित किया जाता रहा है। कुछ स्तंभों में मछली पकड़ते हुए, नाव पर सवारी करते हुए तो कहीं पर पुलिस द्वारा अत्याचार करने के दृष्य भी समाज की चेतना को प्रदर्शित करते हैं।

"मृतक–स्तम्भ को लोग अपनी पारिवारिक परिस्थिति अनुसार बनवाते हैं, सम्पन्न व्यक्ति लकड़ी का स्तम्भ बनवाते हैं।"[1]

उपसंहार

मृतक–स्मृति–स्तंभ की यह कला समाज में एक आईने का काम कर रही है। आदिवासी समाज कलाकारों की कला के माध्यम से अपनी

[1] शोध प्रबन्ध, बस्तर के आदिवासियों के आभूषण एवं साजसज्जा में कलात्मक तत्त्व, संतराम महोबे, पृष्ठ 357–358

अभिव्यक्ति को एक रूप देकर अपनी ओर आकर्षित करती है। अपनी पहचान को आकार प्रदान कर हमेषा–हमेशा के लिए मन के भीतर उतर जाना ही इस आदिवासी कला का उद्वेश्य है जिसमें यह पूरी तरह सफल रही है। मृतक–स्मृति–स्तंभों की इस कला को देखने के बाद, इसके बारे में जानने पर इसके प्रति हमारी जिज्ञासा और बढ़ जाती है। इसी प्रकार की एक कला और है जो हमसे हजारों किलोमीटर दूर मिश्र (मिस्र) देश में पिरामिड के अंदर सुरक्षित है। इस कला का भी मुख्य उदेश्य मृतक की याद में स्मारक स्थापित करना था। पिरामिड के भीतर बने ये चित्र आज भी सुरक्षित एवं महत्वपूर्ण बने हुए हैं। परन्तु इसी भावना से बनाये गये मृतक–स्मृति–स्तंभों बस्तर के कुछ क्षेत्रों में क्षतिग्रस्त होते जा रहे हैं।

कलाकारों एवं परिवार के सदस्यों ने स्वयं ही इस कला को सुरक्षित रखने का उपाय खोजा है–जैसे लकड़ी की जगह पत्थर के स्तंभों का निर्माण, जलरंगों एवं खनिज रंगों की जगह तैल रंग तथा पत्थर एवं सीमेंट पर उकेर कर आकृति तैयार करना आदि।

इस कला का मुख्य स्वरूप भले ही जंगलों के अंदर है परन्तु आर्थिक मदद के माध्यम से इस प्रकार की कला एवं कलाकार को लाभ मिलना चाहिए ताकि यह कला आर्थिक परेशानियों में गुम न हो जाये।

© CGCTA

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1 छत्तीसगढ़ एक भौगोलिक अध्ययन
डॉ० प्रमिला कुमार
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी–2001
2 छत्तीसगढ़ रोड़ एटलस एवं दूरी मार्गदर्शिका

डॉ रामेश्वर प्रसाद आर्य
इंडियन मैप सर्विस, राजस्थान–2005

3 दण्डामी माड़िया
नवल शुक्ला
मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद् प्रकाशन–1987

4 स्तर के आदिवासियों के आभूषण एवं साज–सज्जा में कलात्मक तत्व (शोध–प्रबंध)
संतराम महोबे इ० क० सं० वि० वि० खैरागढ़, छत्तीसगढ़–1983

5 संदर्भ छत्तीसगढ़
ललित सुरजन
पत्रकार प्रकाशन पा०लि० रायपुर (छ०ग०)–1993

6 छत्तीसगढ़ की अस्मिता
डॉ मन्नुलाल यदु
छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान, रायपुर–2002

7 The wild Tribes of India
Horatio Bickestaffe rowney, London
Tnos, De La RME and Co. – 1882

8 The Tribels of India
Sunil Janah,
Oxford, University Pres, Calcutta – 1993

9 The Maria Gond of Bastar
Sir Wilfird Grigson
Vangar Prakashan, Oxford University Press, Calcutta – 1949

10 The Tribal Art of Middle India
Verrier Elwin
Oxford University Press, Calcutta – 1951

© CGCTA